Paper : Classification in Sociology

Emile Durkheim : Mechanical and Organic Society

Miss. CHHAYA
Assistant Professor
Department of Sociology
J.K.P. (PG) College M.Z.N.

Scanned with CamScanner

इमाइल दुर्खीम
(Emile Durkheim : 1858-1917)

फ्रेंच सामाजिक विचारकों में कॉम्ट के 'उत्तराधिकारी' के रूप में इमाइल दुर्खीम का नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है। सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में कॉम्ट की भाँति आपका योगदान भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। कहा जाता है कि आप भी बहुत-कुछ प्रत्यक्षवादी थे और कॉम्ट की भाँति ही धार्मिक तथा तात्त्विक विचारधारा से बहुत दूर रहना चाहते थे। आप सदा ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण को जाग्रत रखने के लिए प्रति सचेत रहे और इसीलिए वैज्ञानिक पद्धतियों को ही अपने समस्त अध्ययन का आधार बनाया। आपका विश्वास था कि समाज या समाजिक घटनाएँ इतनी सरल नहीं हैं कि उन्हें केवल मात्र कल्पना के आधार पर समझा या समझाया जा सके; इसके लिए तो वास्तविक तथ्यों का संकलन अति अनिवार्य है। साथ ही, काल्पनिक आधार पर किसी घटना की व्याख्या इधर-उधर के कारकों की सहायता से करना उचित नहीं है। समस्त सामाजिक घटनाओं का मूल कारक तो **समाज** स्वयं है। समाजशात्री का कार्य वास्तविक प्रयोगों द्वारा प्राप्त किए गए तथ्यों के आधार पर इसी मूल कारक समाज का विश्लेषण तथा व्याख्या करना है, न कि मूल्यों के आधार पर अनुमान लगाना। परन्तु इस सम्बन्ध में **दुर्खीम** ने बारम्बार इस बात पर अत्यधिक वल दिया है कि सामाजिक घटनाओं को जन्म देने में सामूहिक चेतना या समान विचार, धारणाएँ और भावनाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। यही आपका 'सामूहिक प्रतिनिधित्व' का सिद्धान्त है जिसे कि समाजशास्त्रीय विचारधारा के क्षेत्र में दुर्खीम का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा आधारभूत योगदान माना जाता है।

इस प्रकार **दुर्खीम** ने अपने सामाजिक घटनाओं के अध्ययन को केवल एक सतही अध्ययन ही न रखा बल्कि प्रत्येक विषय में अत्यन्त सावधानी बरतते हुए सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का गहन अध्ययन किया। आपने किसी भी विषय में अपना निश्चित मत तव तक व्यक्त नहीं किया जब तक उस विषय से सम्बन्धित समस्त वैषयिक तथ्यों की कसौटी में उसे खूब कस न लिया। उनके द्वारा प्रस्तुत **'सामाजिक श्रम विभाजन का सिद्धान्त', 'धर्म का सामाजिक सिद्धान्त', 'आत्महत्या का सिद्धान्त'** आदि के विश्लेषण से इसी सत्य का पता चलता है। इस विषय में आपका स्थान उस समय तथा पहले के प्रमुख विचारकों जैसे **कॉम्ट, स्पेन्सर, हेनरी मेन, गैबरील टार्ड** आदि

Scanned with CamScanner

से कहीं उच्च स्तर पर है। उदाहरणार्थ, टार्ड ने सामाजिक अन्तःक्रिया के जिस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था उससे दुर्खीम सन्तुष्ट थे; उन्होंने समाज या सामाजिक प्रक्रियाओं का और भी गहन अध्ययन करके यह सिद्ध किया कि सामाजिक घटनाओं की वास्तविकताओं को समझने के लिए सामाजिक अन्तःक्रिया का सिद्धान्त अपर्याप्त है। दुर्खीम के इस मत की पुष्टि उनके 'सामाजिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त' की विवेचना करने पर होगी, यद्यपि इस सिद्धान्त को टार्ड ने स्वीकार नहीं किया है। कुछ भी हो, समकालीन सामाजिक विचारकों में दुर्खीम का स्थान अति सम्मानित है और समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में विकसित करने में आपका योगदान भी अनूठा है।

✍ जीवन-चित्रण तथा कृतियाँ
(Biographical Sketch and Writings)

फ्रेंच दार्शनिक तथा समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम का जन्म सन् 1858 में फ्रांस के एपीनल में हुआ था। पेरिस में कुछ दिनों शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् दुर्खीम जर्मनी चले गए और वहीं पर उन्होंने अर्थशास्त्र; लोक मनोविज्ञान, सांस्कृति मानवशास्त्र आदि का व्यापक अध्ययन किया और अन्त में बोर्डियक्स विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुए। उस समय उस विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध मनोविज्ञानिक अल्फ्रेड एस्पिनास भी प्रोफेसर थे, जिनका समूह-मस्तिष्क सम्बन्धी विचार एक उल्लेखनीय सिद्धान्त है और इनके इस सिद्धान्त से मिलता-जुलता ही दुर्खीम का समूह-मस्तिष्क का सिद्धान्त है। दुर्खीम ने एस्पिनास के सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना करके उसे परिष्कृत करने का प्रयत्न किया ताकि उसे एक बोधगम्य स्वरूप प्राप्त हो सके। इसके पश्चात् आप पेरिस विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र तथा शिक्षा के प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसके पहले ही उन्हें सन् 1893 में इसी विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि मिल चुकी थी। आपके थीसिस का विषय था : *De la division du travail social (The Division of Labour in Society)*। यही आपका सर्वप्रथम तथा एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ समझा जाता है। सन् 1898 में दुर्खीम ने *L' annee sociologique* नामक समाजशास्त्र सम्बन्धी एक पत्रिका प्रकाशित करनी आरम्भ की और स्वयं ही उसके सम्पादक रहे। सन् 1917 में इस असाधारण प्रतिभासम्पन्न समाजशास्त्री की मृत्यु हो गई।

दुर्खीम के प्रमुख ग्रन्थ निम्न हैं : *De la division du travail social* (Paris, 1893), *Lee regles de la methode sociologique* (Paris, 1895), *Le Suicide* (Paris, 1897), *Les formes elementaire de la vie religieuse* (Paris, 1912), Education et sociologie (Paris, 1922), *Sociologie et philosophy* (Paris, 1924), *and L' education morale* (Paris, 1925)।

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है *De la division du travail social* दुर्खीम का सर्वप्रथम ग्रन्थ था परन्तु उनकी ख्याति की यह एक दृढ़ आधारशिला थी। इस पुस्तक में सामाजिक श्रम-विभाजन का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यह आर्थिक दृष्टिकोण

Scanned with CamScanner

से श्रम-विभाजन का अध्ययन नहीं, बल्कि सामाजिक परिणामों की विवेचना है। यह पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है—प्रथम खंड में सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित श्रम विभाजन के कार्यों तथा प्रभावों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है और दूसरे खंड में श्रम-विभाजन की प्रकृति तथा कारणों की विवेचना है। अतः स्पष्ट है कि इस पुस्तक की विषय-वस्तु अर्थशास्त्रीय नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय है।

इस प्रथम पुस्तक के दो वर्ष बाद ही उनकी पुस्तक पुस्तक *Les regles de la methode sociologique* (translated as **The Rules of Sociological Method**) प्रकाशित हुई। जैसाकि इस पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है, इस पुस्तक में **दुर्खीम** ने समाजशास्त्रीय पद्धतियों के नियमों को प्रतिपादित किया क्योंकि इसके बिना समाजशास्त्र को एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करना असम्भव होगा। इस पुस्तक में आपने बारम्बार इस बात पर बल दिया है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन-क्षेत्र से कल्पना तथा प्रातीतिक विवेचना को दृढ़ता में निकाल फेंकना चाहिए। सामाजिक घटनों के समस्त अध्ययन अनिवार्य रूप में वैषयिक तथ्यों पर आधारित होने चाहिएँ। समाजशास्त्र एक विज्ञान है, इस कारण उसकी उस प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए उसके अध्ययन-कार्य में वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग ही उचित है। **दुर्खीम** की यह पुस्तक इसी कारण समाजशास्त्रीय साहित्य में एक आधारभूत ग्रन्थ के रूप में सम्मानित होती है।

उपर्युक्त पुस्तक के प्रकाशित होने के दो वर्ष पश्चात् सन् 1897 में **दुर्खीम** की तीसरी पुस्तक ***Le suicide*** **(The Suicide)** प्रकाशित हुई। यह पुस्तक आत्महत्या के सम्बन्ध में अनुपम विश्लेषण तथा विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करती है। इसका उद्देश्य उन सामाजिक प्रक्रियाओं, प्रभावकों या कारकों का विश्लेषण एवं निरूपण है जिनके कारण आत्महत्या घटित होती है। इस पुस्तक में आत्महत्या से सम्बन्धित कितने ही आँकड़ों को एकत्रित करके **दुर्खीम** ने यह प्रमाणित किया है कि आत्महत्या निश्चित रूप से एक सामाजिक घटना है और सामाजिक घटना इस अर्थ में है कि आत्महत्या तभी होती है जबकि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति का सामूहिक जीवन अव्यवस्थित हो जाता है या उस पर ऐसे सामाजिक प्रभाव या दबाव क्रियाशील होते हैं जोकि उसके सामूहिक जीवन को विघटित कर देते हैं। समाज या समूह ही अधिकतर आत्महत्या का प्रमुख कारण है।

उपर्युक्त पुस्तक के प्रकाशित होने के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद सन् 1912 में **दुर्खीम** की एक अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तक *Le formes elementaire de la vie religieuse* **(translated as The Elementary Forms of Religious Life)** प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का उद्देश्य धर्म के एक विशुद्ध समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को प्रतिपादित करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस पुस्तक में धर्म की प्रकृति, उत्पत्ति के कारण, प्रभाव आदि की अत्यधिक विस्तृत तथा सूक्ष्म व्याख्या की गई और उसी के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है कि समस्त धर्म की उत्पत्ति का प्रमुख स्रोत 'समाज' ही है। 'धर्म का सामाजिक सिद्धान्त' **दुर्खीम** की विचारधारा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

Scanned with CamScanner

उपर्युक्त चार महान् ग्रन्थ **दुर्खीम** के जीवनकाल में ही प्रकाशित हुए थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी पत्नी ने उनकी कुछ अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाशित करवाया था। **दुर्खीम** की मृत्यु के बाद प्रकाशित इन ग्रन्थों में विशेषतः तीन का नाम उल्लेखनीय है—*Education et sociologie* (1922), *Sociologie et Philosophy* (1924), और L' education morale (1925)। इन सब ग्रन्थों ने समाजशास्त्रीय साहित्य के भंडार को समृद्ध किया है और **दुर्खीम** की असाधारण प्रतिभा का परिचय देकर आज भी अमर हैं।

दुर्खीम तथा उनके ग्रन्थों के विषय में इस प्रारम्भिक ज्ञान के आधार पर अब हमारे लिए उनके प्रमुख सामाजिक विचारों का विस्तृत अध्ययन करना सरल होगा। अगले पृष्ठों में हम एक-एक करके उन्हीं की विवेचना करेंगे।

Scanned with CamScanner

सामाजिक एकता का सिद्धान्त
(Theory of Social Solidarity or Unity)

अथवा

यान्त्रिक व सावयवी एकता
(Mechanical and Organic Solidarity)

दुर्खीम की प्रख्यात पुस्तक ***Social Division of Labour*** दो भागों में बँटी हुई है। प्रथम भाग में सामाजिक एकता का विश्लेशण है। **दुर्खीम** का कथन है कि सामाजिक एकता के स्वरूप में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन यान्त्रिक एकता से क्रमशः सावयवी एकता की ओर होता है। अतः सामाजिक एकता के दो विभिन्न रूप हैं—**प्रथम, यान्त्रिक एकता** और **द्वितीय, सावयवी एकता। प्रथम** एकता की विशेषता एकरूपता है और द्वितीय की विभिन्नता। **दुर्खीम्** के शब्दों में, "प्रथम एकता तब ही सम्भव होती है जब व्यक्ति का व्यक्तित्व सामूहिक व्यक्तित्व में विलीन हो जाता है और दूसरी स्थिति (सावयवी एकता) तब ही उत्पन्न होती है जब प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का अस्तित्व अलग-अलग मान्य हो जाता है।" इन दोनों प्रकार की एकताओं को निम्न प्रकार से अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

यान्त्रिक एकता (Mechanical Solidarity)

दुर्खीम का कथन है कि आदिकालीन समाज यान्त्रिक एकता में बँधा हुआ था; परन्तु धीरे-धीरे परिस्थिति के बदलने के साथ इस यान्त्रिक एकता का रूप बदलकर आधुनिक समाज में सावयवी एकता के रूप में स्पष्ट हो गया है। इस परिवर्तन को समझने के लिए आदिकालीन और आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषताओं को ध्यान में रखना होगा। आदिकालीन समाजों में उनका संगठन छोटे आकार का होता था; आवश्यकताएँ इनी-गिनी थीं और वह भी सभी सदस्यों की आवश्यकताएँ प्रायः समान होती थीं; उनके सामाजिक या आर्थिक कार्य, जीवन के ढंग, आचार-विचार, धारणा आदि में भिन्नताएँ न के समान थीं। इसमें सदस्यों में मानसिक तथा नैतिक आधार पर अत्यधिक समानता थी। साथ ही, उन पर जनमत, परम्परा, धर्म आदि का दबाव रहता था। इन सबके फलस्वरूप उस समय व्यक्तिगत समानता के आधार पर एक ठोस एकता होती

Scanned with CamScanner

थी, क्योंकि सामाजिक या वैयक्तिक जीवन के किसी भी पहलू में उल्लेखनीय भिन्नताएँ शायद ही मिलती हों। इस ठोस एकता को ही दुर्खीम ने **यान्त्रिक एकता** कहा है क्योंकि उस समय सब लोग जनमत, परम्परा, धर्म और राजा के दबाव से आँख मूँदकर या यन्त्रवत् कार्य करते रहते थे। इन जनमत, परम्परा आदि का इतना प्रभाव होता था कि व्यक्ति के रूप में किसी का भी कोई महत्त्व नहीं था और व्यक्ति का व्यक्तिगत सामूहिक व्यक्तित्व में इतना घुल-मिल जाता था कि उसके अपने व्यक्तित्व का अस्तित्व तक मिट जाता था। वह समाज के साथ यन्त्रवत् सोचता, काम करता और आदेशों का पालन करता था।

सावयवी एकता (Organic Solidarity)

परन्तु धीरे-धीरे उक्त सभी परिस्थितियाँ बदलती गई। जनसंख्या बढ़ी और उसी के साथ-साथ आवश्यकतएँ भी। इन आवश्यकताओं में भी अनेक भिन्नताएँ आ गई। इन विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़े पैमाने पर सामाजिक कार्य या उत्पादन-कार्य प्रारम्भ करना पड़ा और साथ ही **श्रम विभाजन** की आवश्यकता भी अधिकाधिक अनुभव की जाने लगी। श्रम-विभाजन के फलस्वरूप **कार्यों का विशेषीकरण** हुआ क्योंकि श्रम-विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति निरन्तर एक ही प्रकार का कार्य करता रहता है। इस विशेषीकरण के फलस्वरूप व्यक्तिगत भिन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती गई और उसी के साथ-ही-साथ विभिन्न प्रकार के स्वार्थों का जन्म हुआ। साथ ही, श्रम-विभाजन के फलस्वरूप अनेक प्रकार के पेशा-समूह बनते चले गए। श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के कारण व्यक्ति का महत्त्व बढ़ता गया। इस प्रकार सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक पहलू से भिन्नता का साम्राज्य हुआ। इससे प्राचीन समाजों की भाँति व्यक्तिगत समानता के आधार पर सामाजिक एकता को बनाए रखना सम्भव न हुआ; परन्तु इसके स्थान पर दूसरे किसी सूत्र या बन्धन की आवश्यकता अनुभव की गई जोकि समाज की एकता को बनाए रखे। यह बन्धन आधुनिक समाज में श्रम-विभाजन है क्योंकि श्रम-विभाजन में विभाजन होने पर भी एकता या संगठन या सहयोग की आवश्यकता होती है। किसी प्रकार के श्रम-विभाजन में सहयोगिता का होना प्रथम आवश्यक तत्त्व है क्योंकि श्रम-विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार का कार्य करता है जबकि उसे आवश्यकता होती है नाना प्रकार की सेवाओं और वस्तुओं की। यह आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों के साथ एक सूत्र में बाँध देती है और दूसरों के साथ सहयोग करने को बाध्य करती है। उदाहरणार्थ, श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के कारण हो सकता है कि एक जूते बनाने वाला साइकिल बनाने का काम और एक साइकिल बनाने वाला जूते बनाने का काम न कर सके; परन्तु दोनों को ही एक-दूसरे की सेवाओं की आवश्यकता है। इसलिए वे दोनों एक-दूसरे से सम्बन्धित और एक-दूसरे पर आधारित हो जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक समाज में श्रम-विभाजन के फलस्वरूप विभाजन और विशेषीकरण होते हुए भी विभिन्न सामाजिक

Scanned with CamScanner

विभागों और व्यक्तियों में अन्त-सम्बन्ध, अन्तःनिर्भरता और एकता है। श्रम-विभाजन ने एक ओर तो व्यक्तियों और समूह को अनेक प्रकार से विभाजित कर दिया है, पर दूसरी ओर उनकी आवश्यकताओं के आधार पर उसी श्रम-विभाजन ने उनको एक-दूसरे पर अत्यधिक निर्भर और एक-दूसरे से सम्बन्धित भी कर दिया है। यही **सावयवी एकता** की स्थति है। इस प्रकार की एकता का नाम श्री **दुर्खीम** ने 'सावयवी' एकता इसलिए दिया है कि यह एकता प्राणी के शरीर में पाई जाने वाली एकता से मिलती-जुलती है। शरीर में हाथ केवल हाथ का काम करता है, आँख का नहीं; आँख केवल आँख का कार्य करती हैं, पैर का नहीं; पैर केवल पैर का काम करता है, पेट का नहीं। अर्थात् शरीर के विभिन्न भागों में श्रम-विभाजन और विशेषीकरण है; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आँख, पैर, हाथ, पेट आदि का एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में ये सभी भाग एक-दूसरे से अत्यधिक घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित तथा एक-दूसरे पर अत्यधिक निर्भर हैं। साथ ही सम्पूर्ण शरीर का प्रत्येक भाग पर एक आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। यहाँ तक कि हाथ, हाथ का काम या आँख, आँख का काम तब तक ही कर पाते हैं जब तक वे शरीर से अभिन्न हैं। शरीर से हाथ को अलग कर देने पर वह फिर कोई काम नहीं कर सकता है। आधुनिक युग में सामाजिक श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के फलस्वरूप भी प्रत्येक व्यक्ति का विशेष प्रकार का कार्य, व्यक्तित्व तथा अनुभव होता है; परन्तु अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अन्य अनेक व्यक्तियों पर, या विस्तृत अर्थ में समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार आधुनिक समाज में श्रम-विभाजन और विशेषीकरण होते हुए भी व्यक्ति और व्यक्ति में, व्यक्ति और समूह में, समूह और समूह में एक पारस्परिक सम्बन्ध, पारस्परिक निर्भरता एवं एकता है। यही 'सावयवी एकता' की स्थिति है।

यान्त्रिक व सावयवी एकता से सम्बन्धित वैधानिक व्यवस्थाएँ
(Legal systems related to Mechanical and Organic Solidarity)

दुर्खीम के अनुसार, सामाजिक एकता के इन दो स्वरूपों या अवस्थाओं—अपराध यान्त्रिक और सावयवी—की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें से प्रत्येक अवस्था में एक विशेष प्रकार की वैधानिक व्यवस्था पाई जाती है। यान्त्रिक एकता की अवस्था में समाज में (अ) **दमनकारी कानून** (Repressive Law) का प्रचलन होता है, जबकि सावयवी एकता की अवस्था में (ब) **प्रतिकारी कानून** (Restitutive Law) का प्रचलन होता है। इनकी प्रमुख विशेषताएँ अलग-अलग निम्नवत हैं—

(अ) **दमनकारी कानून** का प्रचलन आदिम समाजों में होता है जहाँ कि सामूहिक चेतना या इच्छा के विरुद्ध कार्य समझे जाते हैं। अतः दण्ड उन्हें दिया जाता है जोकि सामूहिक इच्छा का उल्लंघन करते हैं और सामूहिक भावनाओं को ठेस पहुँचते हैं। दमनकारी कानून का उद्देश्य अपराधी द्वारा की गई क्षति की पूर्ति नहीं है; यह कानून तो समाज में नैतिक सन्तुलन बनाए रखने तथा सामूहिक इच्छा को पुनः स्थापित करने के लिए

Scanned with CamScanner

होता है। इस प्रकार के समाज में नैतिक और वैधानिक उत्तरदायित्व सामूहिक होता है और सामाजिक व वैधानिक पद वंश-परम्परा के अनुसार मिलता चला जाता है। इस सम्बन्ध में **दुर्खीम** ने लिखा है—"समाज में एक इस प्रकार की सामाजिक एकता पाई जाती है जोकि उस समाज के सभी सदस्यों में सामान्य रूप से पाए जाने वाले विचारों या अनुभूतियों से उत्पन्न होती है। भौतिक रूप में दमनकारी कानून इसी प्रकार की सामाजिक एकता की स्थिति में पाया जाता है, कम-से-कम उस सीमा तक तो अवश्य ही जहाँ तक यह अनिवार्य होता है। समाज के सामान्य संगठन में इसका क्या महत्त्व या योगदान होगा यह स्पष्टतः बहुत-कुछ उस सामाजिक जीवन पर निर्भर करता है जोकि सामान्य अनुभूति के अन्तर्गत आ जाता है और उसके द्वारा नियमित होता है। सम्बन्धों में जितनी ही अधिक विभिन्नता पाई जाती है, समाज उतने ही अधिक ऐसे सूत्रों को उत्पन्न करता है जो व्यक्ति को समूह से जोड़ देते हैं, और इसके परिणामस्वरूप समाज में उतनी ही अधिक सामाजिक एकता उत्पन्न होती है। लेकिन इस प्रकार के कितने सम्बन्ध उत्पन्न होंगे, इसका अनुपात दमनकारी कानून पर निर्भर होता है।"

(ब) **प्रतिकारी कानून** आधुनिक समाज की विशेषता है। सभ्यता के विकास और सामाजिक श्रम-विभाजन के साथ-साथ आदिम समाज में पाई जाने वाली एकरूपता नष्ट हो गई तथा समाज में भिन्नताएँ उत्पन्न हो गई। प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व, अनुभव व कार्य हो गए जिसके कारण व्यक्तिगत या वैयक्तिक स्वतन्त्रता का महत्त्व बढ़ गया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि अपराध को अब समस्त समाज के विरुद्ध कार्य या सामूहिक इच्छा या उल्लंघन न समझकर व्यक्ति के विरुद्ध कार्य समझा जाने लगा। इन सब परिवर्तनों के फलस्वरूप कानून का स्वरूप भी 'दमनकारी क़ानून' से 'प्रतिकारी कानून' में बदल गया और अब कानून का उद्देश्य नुकसान-प्राप्त व्यक्ति की हानि को पूरा करना या व्यक्ति को सब-कुछ लौटा देना हो गया जोकि अनुचित रूप से उससे छीन लिया गया है।

इस सामाजिक एकता की धारणा के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि **दुर्खीम** द्वारा प्रस्तुत यह धारणा कोई नई धारणा नहीं है। उनके पहले भी अनेक सामाजिक विचारक इस विषय पर अपना मत प्रकट कर चुके थे। उन विचारकों में **प्लेटो, अरस्तू, फरगूसन, एडम स्मिथ, सेंट साइमन, कॉम्ट, स्पेन्सर, मिल** आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फिर भी **दुर्खीम** ने अपने सिद्धान्त को एक नए रूप में प्रस्तुत किया और इसकी सत्यता को सिद्ध करने के लिए अनेक सामाजिक तथ्यों और आँकड़ों को एकत्रित किया। इससे आपके सिद्धान्त को एक सुदृढ़ वैज्ञानिक स्तर प्राप्त हुआ है।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह स्मरणीय है कि, 'सावयवी एकता' का विश्लेषण तथा निरूपण **दुर्खीम** ने इसलिए नहीं किया कि उनका उद्देश्य आधुनिक समाज के व्याधिकीय पक्ष को प्रकट करना है। उनका कहना है कि सावयवी एकता वाले आज के समाज में व्यक्तिवाद का बोलबाला है; परन्तु इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि व्यक्तिवाद व्यक्ति को उसकी तात्कालिक इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

Scanned with CamScanner

बिना किसी सामाजिक प्रतिबन्ध के असीमित अधिकार देता है, बल्कि इसके विपरीत व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह गहन विशेषीकरण द्वारा अपने पृथक् व्यक्तित्व को इस प्रकार विकसित करे कि वह सामाजिक कल्याण-कार्यों में अधिकाधिक हाथ बँटा सके।

Scanned with CamScanner